विद्यार्थियों की अपेक्षा पर दें ध्यान

शिक्षा व्यवस्था की खामी पर बात काफी दिनों से की जा रही है, मगर सुधार की गुंजाइश कोसों दूर है। हालांकि, सुधारने के लिए नीतियां तो बनाई गई हैं, मगर परिणाम नहीं दिखा है। हम वाकई शिक्षा प्रणाली में सुधार करना चाहते हैं तो सबसे पहले यह देखना होगा कि हम चाहते क्या हैं। विद्यार्थियों की अपेक्षा क्या है? जिस दिन हम विद्यार्थियों की अपेक्षा के हिसाब से काम करना शुरू कर देंगे, उस दिन से शिक्षा का स्तर सुधर जाएगा।

समाज में शिक्षा समाज द्वारा पोषित और गुरुजनों द्वारा संचालित रही है। सरकार या फिर राज्य का हस्तक्षेप भी शिक्षा में कभी नहीं रहा, पर बदलते समय के अनुसार सरकार और राज्य इसे चलाने और पोषित करने लगे। किंतु सबकी भावना यही रही कि इसकी स्वायत्तता बनी रहे। शिक्षा का यह बदलता दौर नई तरह की समस्याएं लेकर आया है। आज की शिक्षा सरकार से आगे बाजार तक जा पहुंची है। यह शिक्षा समाज के सामाजिक नियंत्रण से मुक्त है और सरकारें भी यहां अपने आपको पूरी तरह से असहाय महसूस कर रही हैं। निजी विद्यालयों से प्रारंभ हुआ यह क्रम अब निजी विश्वविद्यालयों तक फैल गया है। निजी क्षेत्र में शिक्षा का होना बुरा नहीं है, किंतु वह समाज में दूरियां बढ़ाने लगे, पैसे का महत्व स्थापित करने लगे और कदाचार को बढ़ाए, तो वह बुरी ही है। आजादी के पूर्व व बहुत बाद तक निजी क्षेत्र के तमाम सम्मानित नागरिक, राजनेता और व्यापारी शिक्षा के क्षेत्र के लिए अपना योगदान देते थे। बड़ी-बड़ी संस्थाएं खड़ी करते थे, किंतु सोच में व्यापार नहीं, सेवा का ही भाव होता था।

आज जो भी लोग शिक्षा के क्षेत्र में आ रहे हैं, वे व्यापार की नीयत से आ रहे हैं। उन्हें लगता है कि शिक्षा का क्षेत्र एक बहुत ही लाभ देने वाला क्षेत्र है। व्यापारिक मानसिकता के लोगों की घुसपैठ ने इस क्षेत्र को बुरी तरह से गंदा कर दिया है। आज भारत में एक दो नहीं, कितने स्तर की शिक्षा है, कहा नहीं जा सकता। सरकारी क्षेत्र को व्यापार और बाजार की ताकतें ध्वस्त करने पर आमादा हैं। राजनीति और प्रशासन इस काम में उनका सहयोगी बना है। नीतियां निजी क्षेत्रों के अनुकूल बनाई जा रही हैं और सरकारी शिक्षा केंद्रों को स्लम में बदलने की रणनीति अपनाई जा रही है। यह अत्यंत दुखद बात है कि हमारी सरकारी प्राथमिक शिक्षा आज पूरी तरह नष्ट हो चुकी है। माध्यमिक शिक्षा और तकनीकी शिक्षा में भी बाजार के बाजीगर हावी हो चुके हैं और उनकी कोशिश है, उच्च शिक्षा भी उनके हिसाब से चले।

उच्च शिक्षा में सरकारी विश्वविद्यालय, आईआईटी, आईआईएम अब भी एक स्तर रखते हैं। बौद्धिक क्षेत्र में उनके योगदान को नकारा नहीं जा सकता। कई विश्वविद्यालय आज भी वैश्विक मानकों पर खरे हैं और बेहतर काम कर रहे हैं। देश की बौद्धिक चेतना व शोधकार्यों को बढ़ाने में उनका एक खास योगदान है। किंतु जाने क्या हुआ कि सरकारों का अचानक उच्च शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत अपने इन विश्वविद्यालयों से मन भर गया और वे निजी क्षेत्र को बहुत आशा से निहारती हैं, जैसे वह कुछ अच्छा करेगा। निजी क्षेत्र किस मानसिकता से उच्च शिक्षा के क्षेत्र में आ रहा है, वह किसी से छिपा नहीं है। उसके इरादे बहुत साफ हैं। फिर भी सरकारी विश्वविद्यालयों में एक अरसे से शिक्षकों की नियुक्ति नहीं की जा रही है।

दूसरी ओर, सरकारी कॉलेज संसाधनों के अभाव में खस्ताहाल होते जा रहे हैं। वहीं, नीतियां सरकारी विश्वविद्यालयों, कॉलेजों को ताकतवर बनाने के बजाए निजी क्षेत्र को ताकतवर बनाने की हैं। क्या हम सरकारी उच्च शिक्षा के क्षेत्र को भी सरकारी प्राथमिक स्कूलों की तरह जल्द ही स्लम में नहीं बदल देंगे, यही एक बड़ा विचारणीय सवाल है? राजनीतिक घुसपैठ, आर्थिक कदाचार और नैतिक पतन से हमारे विश्वविद्यालय जूझ रहे हैं। उन्हें ताकतवर करने के बजाए बीमार किया जा रहा है। ऐसे समय में शिक्षकों को आगे आना होगा। अपने कर्तव्य की श्रेष्ठ भूमिका से उन्हें विश्वविद्यालयों और कॉलेजों को बचाना होगा। अपने प्रयासों से शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ानी होगी, ताकि अप्रासंगिक हो रही क्लास रूम टीचिंग के मायने बचे रहें। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत शिक्षकों की बड़ी जिम्मेदारी है कि वे अपने परिसरों को जीवंत बनाएं एवं छात्र-अध्यापक संबंधों की फिर से व्याख्या करें। सिर्फ वेतन गिनने और काम के घंटों का हिसाब करने के बजाए वे स्वयं को नई पीढ़ी के निर्माण में झोंक दें। यही एक रास्ता है, जो हमें निजी क्षेत्र के आकर्षण से बचाएगा।

आज भी व्यक्तिगत योग्यताओं के सवाल पर हमारे विश्वविद्यालय श्रेष्ठतम मानव संसाधन के केंद्र हैं। किंतु अपने कर्तव्यबोध को जागृत करने और अपना श्रेष्ठ देने की मानसिकता में कमी जरूर आ रही है। ऐसे में हमें देखना होगा कि हम किस तरह अपने लोगों को न्याय दे सकते हैं। संकट यह है कि आज का शिक्षक कक्षा में बैठे छात्र तक भी नहीं पहुंच पा रहा है। उसकी बढ़ती दूरी कई तरह के संकट पैदा कर रही है। एक समय ऐसा था कि शिक्षक अपने विद्यार्थी को नाम से जानता था और उसकी परेशानी से लेकर प्रतिभा तक से परिचित होता था। आज पुनः उसी गुरु-शिष्य परंपरा को जीवंत करना होगा।

विश्वविद्यालय परिसरों में राजनीतिक ताकतों का बढ़ता हस्तक्षेप नए तरह के संकट लाता है। शिक्षा की गुणवत्ता इससे प्रभावित हो रही है। इसे बचाना शिक्षकों की ही जिम्मेदारी है। वही अपने छात्रों को न्याय दे सकता है, जीवन के मार्ग दिखा सकता है। आज युवा व छात्र समुदाय एक गहरे संघर्ष में है। उसके आने वाले जीवन की चुनौतियां काफी कठिन हैं। बढ़ती स्पर्धा के साथ निजी क्षेत्रों की कार्यस्थितियां, सामाजिक तनाव और कठिन होती पढ़ाई की कई चुनौतियां हैं। कई तरह की प्राथमिक शिक्षा से गुजर कर आया युवा उच्च शिक्षा में भी भेदभाव का शिकार होता है। भाषा के चलते दूरियां व उपेक्षा है, तो स्थानों का भेद भी है। अंग्रेजी के चलते हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं के छात्रों की हीनभावना को भी दूर करना कम बड़ी चुनौती नहीं है। आज के युवा के पास तमाम चमकती हुई चीजें भी हैं, जो जाहिर है, सबकी सब सोना नहीं हैं। उसके संकट हमारे-आपसे बड़े और गहरे हैं। उसके पास ठहरकर सोचने का अवकाश व एकांत भी नहीं है। मोबाइल एवं मीडिया के हाहाकारी समय ने उससे स्वतंत्र चिंतन की दुनिया भी छीन ली है। वह सूचनाओं से आक्रांत तो है, पर काम की सूचनाएं उससे कोसों दूर हैं।

भविष्य को लेकर चिंतित है। ऐसे कठिन समय में वह एक बेरहम समय से मुकाबला कर रहा है। बताइए, उसे इन सवालों के हल कौन बताएगा? जाहिर तौर पर शिक्षा के क्षेत्र को बचाने की जिम्मेदारी आज शिक्षक समुदाय पर है। वही राष्ट्रनिर्माता है। उसे डॉ. राधाकृष्णन और डॉ. एपीजे अब्दुल कलाम जैसे आदर्शों की सोच को सामने रखकर काम करने की जरूरत है, तभी यह संभव हो पाएगा। इन तमाम चुनौतियों से लड़ने एवं अपने विद्यार्थियों को तैयार करने की जिम्मेदारी शिक्षकों की ही है। आज का युवा देश का भविष्य है और भविष्य के साथ खिलवाड़ किसी भी हालत में क्षम्य नहीं है। देश के विकास और शिक्षा के भले के लिए सकारात्मक संकल्प अध्यापकों और विद्यार्थियों को ही लेना होगा, तभी शिक्षा का क्षेत्र नाहक तनावों से मुक्त हो सकेगा। उम्मीद की जानी चाहिए कि शिक्षा के व्यापारीकरण के खिलाफ समाज और सरकार भी सतर्क दृष्टि रखेंगी।

शिक्षा व्यवस्था की खामी पर बात काफी दिनों से की जा रही है, मगर सुधार की गुंजाइश कोसों दूर है। हालांकि, इस ढर्रे को सुधारने के लिए नीतियां तो बनाई गई हैं, मगर उसका परिणाम अब तक नहीं दिखा है। अगर हम वाकई शिक्षा प्रणाली में सुधार करना चाहते हैं तो सबसे पहले यह देखना होगा कि हम चाहते क्या हैं। विद्यार्थियों की अपेक्षा क्या है? जिस दिन हम विद्यार्थियों की अपेक्षा के हिसाब से काम करना शुरू कर देंगे, उस दिन से स्कूलों का हाल भी सुधर जाएगा और शिक्षा भी।

अनुपमा सरदेसाई
(वरिष्ठ पत्रकार)

सम्पादकीय

बेलगाम सैम पित्रोदा ने अपने बयान से खुद को और कांग्रेस को मुसीबत में डाला

कांग्रेस के नेता सैम पित्रोदा ने एक बार फिर कांग्रेस को भी मुसीबत में डाला और खुद को भी। 1984 के सिख विरोधी दंगों को लेकर उन्होंने जिस तरह यह कहा कि जो हुआ सो हुआ उस पर तीखी प्रतिक्रिया होनी ही थी। पहले तो उन्होंने यह कहकर बच निकलने की कोशिश की कि विरोधियों ने उनके शब्दों को तोड़-मरोड़ कर पेश किया, फिर उन्होंने अपने बयान के लिए यह कहते हुए खेद जता दिया कि उनकी हिंदी अच्छी नहीं। उनका कहना सही हो सकता है, लेकिन आखिर जिस भाषा में वह सहज नहीं उसका उन्होंने इस्तेमाल ही क्यों किया और वह भी इतने संवेदनशील मसले पर? उन्हें यह पता होना चाहिए कि आज के इस दौर में टीवी कैमरे के सामने दिए जाने वाले बयान स्वत- ही सब कुछ स्पष्ट कर देते हैं। आखिर इसकी अनदेखी कैसे की जा सकती है कि वह झल्लाहट में आकर यह कहते दिख रहे हैं कि 1984 में हुआ तो हुआ। मुश्किल यह है कि सैम पित्रोदा की तरह अन्य अनेक नेतागण भी सार्वजनिक तौर पर कुछ भी कह जाते हैं और फिर मीडिया अथवा विरोधियों पर यह आरोप मढ़ते हैं कि उनकी बात को सही तरह से पेश नहीं किया गया। 1984 के सिख विरोधी दंगे देश के लिए एक दाग की तरह हैं। एक नरसंहार सरीखे ये भीषण दंगे इसलिए एक जख्म जैसे हैं, क्योंकि उनके लिए जिम्मेदार कई अपराधी अभी भी सजा से दूर हैं। इस भयावह घटना पर तो हर दल और खासकर कांग्रेस के नेताओं को कहीं सतर्क होकर बोलना चाहिए। दुर्भाग्य से कांग्रेस ने इस मामले की संवेदनशीलता को समझने से पहले भी इन्कार किया है। यह एक तथ्य है कि दिल्ली में सिख विरोधी दंगे भड़काने के आरोपी नेताओं को चुनाव लड़ाया गया और मंत्री भी बनाया गया।

यह पहली बार नहीं जब सैम पित्रोदा ने अपने किसी कथन से कांग्रेस के लिए मुश्किल खड़ी की हो। बहुत दिन नहीं हुए जब उन्होंने पुलवामा हमले के जवाब में बालाकोट में हुई एयर स्ट्राइक पर यह कह दिया था कि कुछ लोगों की गलती के लिए पूरे पाकिस्तान को दोष देना सही नहीं।

वह बालाकोट में आतंकियों के मारे जाने के प्रमाण भी चाह रहे थे। वह केवल इतने तक ही सीमित नहीं रहे। उन्होंने मुंबई हमले का जिक्र करते हुए कहा कि आठ लोग आए और उन्होंने कुछ किया तो इसके लिए आप पाकिस्तान को निशाने पर कैसे ले सकते हैं? उन्हें अपने इस बयान के लिए भी सफाई देनी पड़ी थी। क्या यह महज एक दुर्योग है कि सैम पित्रोदा ने सिख विरोधी दंगों को भी हल्के में लिया और मुंबई हमले को भी? यह सही है कि सैम पित्रोदा पारंपरिक नेताओं की तरह नहीं हैं, लेकिन राहुल गांधी के सलाहकार और इंडियन ओवरसीज कांग्रेस के प्रमुख होने के नाते उन्हें कहीं अधिक संभलकर बोलना चाहिए।

वह अपने बयानों से अपनी छवि खराब करने के साथ ही अपने उस योगदान को भी किनारे करने का काम कर रहे हैं जो उन्होंने संचार क्षेत्र में दिया था।